LVI-6

ऋषि, छन्द, सप्तर्षि व स्तोम

विपिन कुमार, पदार्थ प्रभाग, राष्ट्रीय भौतिक प्रयोगशाला, नई दिल्ली-110012
तथा
राधा गुप्ता, J - 178, HIG कालोनी, इन्दौर - 452011

कहा जाता है कि प्रत्येक वैदिक मन्त्र का रहस्य उसके ऋषि, देवता व छन्द में निहित है । लेकिन वैदिक साहित्य की भाषा रहस्यमय होने के कारण आज ऋषि, छन्द आदि शब्दों के वास्तविक अर्थों का अनुमान लगाना ही कठिन हो गया है । वर्तमान प्रपत्र में इस दिशा में एक प्रयास किया गया है ।

ऋषि

ऋषि शब्द के बहुत से निर्वचन ब्राह्मणों, पुराणों, निरुक्त, धातु कोश आदि में मिल सकते हैं । उदाहरण के लिए, शतपथ ब्राह्मण 6.1.1.1 का कथन है कि प्राण ऋषि हो सकते हैं । श्रम व तप से क्रोध किया (श्रमेण तपसा अरिषन्), इसलिए ऋषि नाम पडा । लेकिन व्यवहार में यह कथन ऋषि शब्द को समझने के लिए पर्याप्त नहीं है । शब्दों का अर्थ लगाने के लिए धातु कोश का आश्रय लिया जाता है । ऋषि धातु गत्यर्थक है जिसे अप्रत्यक्ष रूप से ज्ञानार्थक समझा जाता है (गम् - ज्ञाने) । पुराणों में ऋष् हिंसायाम द्वारा भी ऋषि को समझाने की चेष्टा की गई है । एक कथा में ऋषि यज्ञ में पशु हिंसा का समर्थन नहीं करते, जबकि उपरिचर वसु करता है । अतः ऋषि उसे शाप दे देते हैं । पुराणों में ऋषियों का वर्गीकरण 3 श्रेणियों में किया गया है - सत्य से ऋषिता प्राप्त करने वाले, ज्ञान से ऋषिता प्राप्त करने वाले और तप से ऋषिता प्राप्त करने वाले । पुराणों में इनमें से प्रत्येक वर्ग के ऋषियों के नाम भी दिए गए हैं । ब्रह्माण्ड पुराण 1.2.32.68 आदि में कहा गया है कि तपोरत ऋषियों ने मन्त्रों की रचना 5 कारणों से की - असंतोष, भय, दुःख, सुख व शोक से । लेकिन ब्राह्मणों व पुराणों के उपरोक्त कथन हमें संतुष्ट नहीं करते । इसका एक कारण यह भी है कि आज सामान्य रूप से सत्य, ज्ञान, तप शब्दों का अर्थ भी पता नहीं है । वर्तमान प्रपत्र में ऋषि शब्द को ऋषियों के संदर्भ में आए अन्य कथनों के आधार पर समझने का प्रयास किया गया है । शतपथ ब्राह्मण 1.6.2.3, तैत्तिरीय संहिता 2.6.3.2 आदि में वर्णन आता है कि ऋषियों ने देखा कि देवताओं ने स्वर्ग जाने के पश्चात् यज्ञ में यूप को उल्टा करके गाड दिया जिससे अन्य लोग स्वर्ग न जाने पाएं । तब उन्होंने वहां यज्ञवास्तु रूप कूर्म को देखा । उन्होंने कूर्म से कहा कि ठहर जा । वह न ठहरा । ऋषियों ने उससे कहा - इन्द्र के लिए ठहर, बृहस्पति के लिए ठहर, अश्विनौ देवताओं के लिए ठहर, अग्नि के लिए ठहर आदि । अग्नि के नाम से वह ठहर गया । कूर्म में ऋषि शब्द का रहस्य छिपा है । एक अन्य संदर्भ में कहा गया है कि यह जो कूर्म है, यह आङ्गिरस ऋषि प्राणों द्वारा एकत्र किया गया अङ्ग - अङ्ग का रस है । यज्ञ में कूर्म पुरोडाश का रूप भी होता है और पुरोडाश मस्तिष्क का । जैसे मस्तिष्क अङ्ग - अङ्ग के रस से बना है, सब अङ्गों का सार रूप है, वैसे ही कूर्म भी है । और इस रस को एकत्र करने का, रस निकालने का कार्य प्राण रूपी ऋषि करते हैं । जहां भीं कहीं रस निकालने का, सार भाग ग्रहण करने का काम हो, वहां कोई न कोई प्राण रूप ऋषि प्रकट हो जाता है। पुराणों में आता है कि प्राचीन काल में किसी कारण से वेद समुद्र के जल

Vijnana Bharati

में मिल गए । विष्णु ने ऋषियों को आदेश दिया कि इन्हें एकत्र करो । तब जिस - जिस ऋषि ने जो - जो मन्त्र जल से प्राप्त किए, उनकी ख्याति उन्हीं के नाम से हो गई । इस कथा में भी अप्रत्यक्ष रूप से जल से सार को, रस को ग्रहण करने की बात कही गई है । रस को ग्रहण करने में क्या कठिनाई है ? हमारी जिह्वा सारे रसों का आस्वादन करती ही है । सारे प्राण रूपी ऋषि इस पर विराजमान हैं । लेकिन हमारी जिह्वा घास के रस का आस्वादन नहीं कर पाती जिसका आस्वादन अन्य पशुओं की जिह्वा कर लेती है । आधुनिक विज्ञान का कहना है कि यह प्रत्येक प्राणी की जिह्वा में उपलब्ध एन्जाईम के कारण है । एन्जाइम को इस प्रकार समझा जा सकता है कि सामान्य परिस्थिति में कोई भी प्राणी किसी रस का आस्वादन नहीं कर सकता । इसका कारण यह है कि थोथे पदार्थ के अणुओं को तोडकर उनसे रस का आस्वादन करने में बहुत शक्ति की आवश्यकता होती है जो पशुओं की जिह्वा के रस में नहीं है । लेकिन प्रकृति ने जिह्वा के रस में एक रासायनिक पदार्थ मिलाया है जो इस भारी भरकम कार्य को सरल बना देता है । इस रासायनिक पदार्थ को एन्जाइम कहते हैं । उदाहरण के लिए यदि कोई दीवार 8 फुट ऊंची खडी है जिसे कूद कर पार करना कठिन है तो एन्जाइम उसे 2 - 3 फुट ऊंची ही कर देता है । यह एन्जाइम प्रत्येक पशु में अलग - अलग होता है । सामान्य रूप से तृण या फाइबर का रस लेने की शक्ति दीमक के सिवाय और किसी प्राणी में नहीं है । केवल दीमक में ही वह एन्जाइम होता है जो लकडी या किसी अन्य तन्तु के अणु को तोडकर उसका रसास्वादन कर सकता है । और वैदिक साहित्य ने इस उदाहरण का भरपूर प्रयोग किया है । यज्ञ में दीमक की बांबी की मिट्टी को लाकर प्रयोग किया जाता है और कहा गया है कि यह जो दीमक द्वारा पृथिवी की मिट्टी को बाहर फेंकने से छिद्र बने हैं, यह हमारे कान या श्रोत्र हैं । ऋग्वेद में एक ऋषि का नाम वम्रि वैखानस है । वम्रि दीमक को कहते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि रस विशेष का आस्वादन करने के लिए, ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु का रसास्वादन करने के लिए हमें अपने प्राणों को, ऋषियों को जाग्रत करना पडेगा, उन्हें सबल बनाना होगा । यह कार्य पुराणों में तीन प्रकार से संभव बताया गया है ।

ऋषि शब्द की एक निरुक्ति का प्रयास ऋक्ष के आधार पर भी किया जा सकता है । ऋक्ष या नक्षत्र भी रस का आदान करते हैं ।

ऋषियों द्वारा रस के सम्भरण का संदर्भ वैदिक साहित्य में केवल आङ्गिरस ऋषियों द्वारा कूर्म के रूप में रस के सम्भरण तक ही सीमित नहीं है । ऋग्वेद 9.67.32 , तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.4.8.4 आदि में पावमानी ऋचाओं को ऋषियों द्वारा सम्भृत रस कहा गया है ।

छन्द

अब छन्दों पर आते हैं । यदि प्राण ऋषि हैं तो रस छन्द हैं । शतपथ ब्राह्मण 7.3.1.37 आदि में रस को छन्द कहा गया है (इसके विपरीत, कौशीतकि ब्राह्मण 7.9.11 व 8.17.2 में प्राण को छन्द कहा गया है । पुराणों में विराज गौ से विभिन्न प्रकार के दुग्धों के दोहन के संदर्भ में छन्दों को पात्र कहा गया है) । छन्दों को समझने के लिए ब्राह्मणों में कुछ एक कथन उपयोगी हो सकते हैं । काठक संहिता 38.14 का कथन है कि लोमों से गायत्री में प्रवेश करता हूं, त्वचा से त्रिष्टुप् में, मांस से जगती में, अनुष्टुप् से अस्थि में, मज्जा से पंक्ति में । पुराणों का कथन है कि यह जो हमारे शरीर में लोम हैं, यह पृथिवी पर उगी ओषधियों - वनस्पतियों का प्रतीक हैं । पृथिवी की उर्वरा शक्ति ओषधियों आदि के रूप में गुरुत्वाकर्षण से उल्टी दिशा में प्रकट होती है और कहा गया है कि पृथिवी से इस शक्ति को निकालने का कार्य गायत्री करती है । इसी प्रकार यह हो सकता है कि हमारे शरीर से शक्ति को बाहर निकालने का कार्य भी गायत्री छन्द द्वारा सम्पन्न होता हो । दूसरा अर्थ यह हो सकता है कि लोम सूक्ष्म होते हैं और गायत्री भी सूक्ष्म होती है । लोम से रोमाञ्च अर्थ भी लिया जा सकता है और रसास्वादन करने में जो आनन्द आता है, वह भी गायत्री हो सकता है । रसास्वादन करने के पश्चात् जो अन्य प्रभाव होते हैं, उन्हें त्रिष्टुप् व जगती छन्दों में रखा गया है ।

त्रिष्टुप् छन्द बल प्राप्ति से, शत्रुओं का प्रतिरोध करने से सम्बन्धित है और जगती छन्द
पुष्टि करने से सम्बन्धित है । गायत्री छन्द की चरम परिणति मुख के रूप में होती है, त्रिष्टुप् की चक्षु में और जगती की श्रोत्र में । चक्षु का कार्य प्रकाश का संवेदन करना है और वैदिक भाषा में सत्य और अनृत की परीक्षा करना है ।

जगती छन्द की चरम परिणति श्रोत्र में होती है । जगती छन्द पुष्टि से सम्बन्धित है और मांस भी पुष्टि से । लेकिन जगती का एक और पक्ष भी है । श्रोत्र को जगती कहा गया है और जैसा का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, वैदिक साहित्य में श्रोत्र की उत्पत्ति दीमक द्वारा तन्तुओं को काटने से, उनके काटने से उत्पन्न हुए रिक्त स्थान से होती है । अपने शरीर के स्तर पर इस कथन का सत्यापन कैसे हो सकता है, यह अन्वेषणीय है ।

अनुष्टुप् छन्द को वाक् कहा गया है । वैदिक साहित्य में वाक् के 4 स्तर होते हैं - परा, पश्यन्ती, मध्यमा व वैखरी । वैखरी वाक् वह है जो हमें मर्त्य स्तर पर शकुनों के रूप में सुनाई देती है ।

पंक्ति छन्द के विषय में कहा गया है कि पंक्ति छन्द में 5 पंक्तियां होती हैं और यह ऊर्ध्व दिशा में आध्यात्मिक प्रगति का सूचक है । इसे इस प्रकार लिया जाता है कि लोम, त्वक्, मांस, अस्थि और मज्जा में एक साथ प्रगति हो ।

गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप् व पंक्ति छन्दों को क्रमशः वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद् व हेमन्त ऋतुओं से सम्बद्ध किया गया है और प्रत्येक ऋतु के प्रभाव उस - उस छन्द में भी अभिलक्षित होने चाहिएं । होते हैं या नहीं, इसकी परीक्षा आगे की जाएगी । इसी प्रकार गायत्री से आरम्भ होने वाले 4 छन्दों को पूर्व आदि 4 दिशाओं से सम्बद्ध किया गया है । जैसा कि विज्ञान भारती प्रदीपिका को प्रकाशन के लिए प्रस्तुत किए गए दो अन्य प्रपत्रों में कारण व कार्य के सम्बन्ध में स्पष्ट किया गया है, पूर्व दिशा मूल कारण की उत्पत्ति से सम्बन्धित है, पश्चिम दिशा कर्मों के फल को अस्त करने की, उनका क्षय या प्रायश्चित्त करने की दिशा है । दक्षिण दिशा दक्षता प्राप्त करने की, दक्षिणा प्राप्त करने की दिशा है । किसी प्रकार से यह दिशा द्यूत से भी जुडी है और डा. लक्ष्मीनारायण धूत का कथन है कि वैदिक साहित्य के द्यूत का अर्थ आधुनिक विज्ञान की भाषा में चांस होता है । यह संसार द्यूत पर आधारित है । कोई कार्य हो भी सकता है, नहीं भी । जगती पश्चिम दिशा से सम्बद्ध है । योगवासिष्ठ का कथन है कि पश्चिम काया को ऐसा बना देना चाहिए कि उस स्थिति में किसी भी कर्म के फल का अंकुरण न हो, सब कर्म रूपी बीज भुन जाएं । अनुष्टुप् उत्तर दिशा से । उत्तर दिशा सब प्रकार के द्वन्दों से, द्यूत से, संभावनाओं से, चांस से ऊपर उठकर निश्चितता की दिशा है । इसी लिए पुराणों आदि में जहां कहीं भक्त को तप के अन्त में भगवान् की स्तुति करनी होती है, वह अनुष्टुप् छन्द में करता है ।

सोमयाग में इन दिशाओं का महत्त्व विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है । सोमयाग की वेदी के 2 भाग होते हैं - प्राग्वंश और महावेदी या उत्तरवेदी । महावेदी में पूर्व दिशा गायत्री छन्द से सम्बन्धित होती है । सोमयाग के संदर्भ में यह जान लेना सबसे महत्त्वपूर्ण होगा कि वहां

Vijnana Bharati

प्राग्वंश और महावेदी में सैद्धान्तिक रूप में क्या अन्तर है । महावेदी में सबसे पूर्व में यूप गडा होता है जिससे यजमान रूपी पशु को बांधा जाता है । यूप के पश्चिम में उत्तरवेदी या आहवनीय अग्नि का स्थान होता है, उससे पश्चिम में हविर्धान मण्डप होता है और सबसे पश्चिम में सदोमण्डप होता है । यूप, हविर्धान मण्डप व सदोमण्डप प्राग्वंश में नहीं होते, अथवा यह कहा जा सकता है कि अविकसित अवस्था में होते हैं । यूप संवत्सर का प्रतीक है जिसे कहा गया है कि देवों ने उल्टा कर दिया है । संवत्सर से तात्पर्य यह निकलता है कि पृथिवी सूर्य के चारों ओर भ्रमण करती है और इस कारण दिन, पक्ष, मास, ऋतु, अयन आदि रूप में संवत्सर का जन्म होता है । भौतिक पृथिवी भौतिक सूर्य की परिक्रमा करती है, यहां तक तो ठीक है । लेकिन जब चेतना के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो यह ठीक हो भी सकता है, नहीं भी । सामान्य स्थिति तो यही है कि चेतना की पृथिवी सूर्य की परिक्रमा नहीं करती । चेतना रूपी पृथिवी से यह अपेक्षा है कि वह सूर्य की परिक्रमा करे, चेतना के कार्य किसी चेतन सूर्य द्वारा नियन्त्रित हों । तभी महावेदी का साक्षात्कार संभव हो सकता है । भौतिक पृथिवी सूर्य की परिक्रमा में जिस पथ का निर्माण करती है, आधुनिक विज्ञान उसे परवलयाकार बताता है । कुछ आकाशीय पिण्डों का भ्रमण इस प्रकार भी होता है कि उनका पथ अतिपरवलयाकार (हाईपरबोलिक) बनता है । अतिपरवलय में पिण्ड बारम्बार परिक्रमा नहीं कर सकता, एक बार ही कर सकता है । लगता है सामान्य चेतना रूपी पृथिवी के लिए यह पथ अधिक उपयुक्त है । आधुनिक विज्ञान के अनुसार इस ब्रह्माण्ड में ऐसा हो रहा है कि कारण कार्य को नियन्त्रित करता है, कार्य कारण को नहीं । प्राग्वंश की स्थिति में यूप जैसा कोई नियन्त्रक कारण नहीं है और वहां भौतिक जगत के कार्य - कारण लागू होने चाहिएं ।

जब चेतना रूपी पृथिवी चेतन सूर्य की परिक्रमा करती है तो संभवतः पुराणों में उसे अदिति आदि नाम दिए गए हैं । त्रिष्टुप्, जगती आदि दिति, खण्डित शक्तियों के अन्तर्गत आते हैं, यद्यपि इन्हें भी गायत्री की भांति ही पृथिवी कहा गया है ।

सोमयाग में प्रातःसवन को गायत्री से, माध्यन्दिन सवन को त्रिष्टुप् से और तृतीय सवन को जगती से व उसके पश्चात् सम्पादित होने वाले अग्निष्टोम सामगान को अनुष्टुप् से सम्बद्ध किया गया है । इन तीन सवनों में जो कृत्य सम्पादित होते हैं, उनसे तीन छन्दों की प्रकृति का उद्घाटन होना चाहिए । परिशिष्ट में माध्यन्दिन और सायंसवन के कृत्यों के नाम दिए गए हैं ।

सोमयाग में प्रातःसवन गायत्री छन्द से सम्बद्ध होता है और इस सवन में जो कृत्य किए जाते हैं, वह अन्य सवनों के लिए बीज रूप बनते हैं । वैदिक साहित्य की भाषा में इसे रेतः सिंचन कहा गया है । यह अन्वेषणीय है कि गायत्री छन्द के रहस्यों को प्रातः सवन के माध्यम से किस प्रकार उद्घाटित किया जा सकता है । प्रातःसवन में एक कृत्य प्रातरनुवाक होता है जिसमें होता ऋत्विज महावेदी में हविर्धान मण्डप के पूर्व द्वार पर बैठकर अग्नि, उषा व अश्विनौ देवताओं के लिए 7 - 7 छन्दों वाली ऋचाओं का जप करता है । शतपथ ब्राह्मण का कथन है कि यह जप रात्रि में उस काल में होना चाहिए जब पशु - पक्षियों ने बोलना भी आरम्भ न किया हो । इसका अर्थ होगा कि प्रातरनुवाक सबसे पहली, शकुन से भी पहली अन्तः प्रेरणा है । नारायणोपनिषद में गायत्री छन्द का देवता सविता कहा गया है । वैदिक साहित्य में सविता प्रसविता कहा जाता है । वैदिक कर्मकाण्ड में कार्य सम्पादन से पूर्व सवितुः प्रसवित्राभ्यां, अश्विनोर्बाहुभ्यां, पूष्णो हस्ताभ्यां इत्यादि मन्त्र का वाचन किया जाता है ।

प्राग्वंश में गार्हपत्य अग्नि के चयन के पश्चात् और उत्तरवेदी में आहवनीय अग्नि के चयन से पूर्व सोमक्रयण नाम का कृत्य सम्पादित किया जाता है जिसमें ऋत्विजगण व यजमान शूद्र से सोम क्रय करते हैं । यह सोम एक ग्रन्थि में बंधा हुआ प्राग्वंश की आहवनीय अग्नि के दक्षिण में रखा रहता है । वहां इसकी अतिथि रूप में पूजा भी की जाती है । जब प्राग्वंश में प्रवर्ग्य संभरण का कार्य पूरा हो जाता है तो इस सोम को महावेदी में स्थान्तरित करते हैं और वहां हविर्धान मण्डप में इसका रस निकाला जाता है और उसे देवों को अर्पित किया जाता है । यहां ब्राह्मणों में दिये गए इस आख्यान का उल्लेख महत्त्वपूर्ण है कि जगती, त्रिष्टुप व गायत्री सोम आहरण के लिए द्युलोक में गए लेकिन उनमें से केवल गायत्री ही सोम को लाने में समर्थ हो सकी । जैसा कि ऊपर कहा गया है, यह आवश्यक नहीं है कि हमारी चेतना रूपी पृथिवी चेतन सूर्य के परितः भ्रमण करे ही । ऐसे ही यह आवश्यक नहीं है कि भौतिक रूप में जो चन्द्रमा पृथिवी का परिभ्रमण करता रहता है, वह घटना स्वाभाविक रूप से चेतना के स्तर पर भी सत्य हो । उसे सत्य बनाने के लिए विशेष प्रयास की आवश्यकता होगी और लगता है कि यह कार्य गायत्री द्वारा सम्पन्न हो सकता है । प्राग्वंश में आहवनीय के दक्षिण में सोम बंधा हुआ रखा रहता है, उसका उपयोग नहीं किया जा सकता । महावेदी के हविर्धान मण्डप में उसका मुक्त रूप से उपयोग किया जाता है । यहां गायत्री निहित होनी चाहिए क्योंकि वही पृथिवी पर सोम के उपयोग को सम्भव बनाती है । सोम से क्या तात्पर्य हो सकता है ? मन के विकसित रूप को चन्द्रमा कहा गया है (चन्द्रमा मनसो जातः इत्यादि) । अतः आधुनिक विचारकों की भाषा में यह कहा जा सकता है कि प्राग्वंश में सोम के बंधे होने, उपयोग न हो पाने से तात्पर्य अचेतन मन से है, वह मन जो अचेतन रूप में हमारे जीवन के सभी कार्यों को सम्पादित कर रहा है । इस अचेतन मन को चेतन बनाने की आवश्यकता है । यह कार्य महावेदी में हो जाता है । गायत्री को शरीर में मुख रूप कहा जाता है । मुख का कार्य रस का आस्वादन करना होता है । भोजन से पुष्टि आदि का कार्य तो जठर आदि में होता है । अतः यह कहा जा सकता है कि रस उत्पन्न करने का कार्य गायत्री द्वारा सम्पन्न होना चाहिए । पृथिवी पर बहुत से भोज्य पदार्थों में रस होता है, बहुतों में नहीं । यह कहा जा सकता है कि जिन पदार्थों में रस विकसित हुआ है, वह गायत्री का कार्य है और यह रस एक प्रकार से उस पदार्थ के चेतन मन का रूप है ।

शतपथ ब्राह्मण 6.1.3.6 में अग्निचयन के संदर्भ में कहा गया है कि आपः के मन्थन से फेन उत्पन्न होता है, फेन से मृदा, मृदा से सिकता, सिकता से शर्करा, शर्करा से अश्मा, अश्मा से अयः और अयः से हिरण्य । कहा गया है कि यह 8 रूप गायत्री के 8 अक्षर हैं । इस पहेली के संदर्भ में यह सुझाव है कि आपः से तात्पर्य मनुष्य के आभा मण्डल से हो सकता है । अथवा यह प्राण और अपान की सन्धि हो सकती है । इस आभा मण्डल में वायु का प्रवेश कराने पर, वायु द्वारा मन्थन करने पर फेन उत्पन्न होता है, फेन से मृदा, मृदा से सिकता आदि । इनमें उत्तरोत्तर रूप में कर्षण शक्ति का विकास होता जाता है । हमारे शरीर रूपी पृथिवी में यह न्यूनता है कि उसमें कर्षण शक्ति पर्याप्त नहीं है । मस्तिष्क किसी अङ्ग के रोग को जान भी सकता है, नहीं भी । लेकिन यदि कर्षण पर्याप्त रूप से प्रबल हो जाए तो स्थिति अन्यथा होगी । यह एक व्यावहारिक विषय है । इससे आगे शतपथ ब्राह्मण 6.1.3.9 में कुमार के 8 नामों रुद्र, शर्व, पशुपति, उग्र, अशनि, भव, महादेव व चन्द्रमा को गायत्री के 8 अक्षर कहा गया है । यह संभव है कि पहले 8 अक्षर गायत्री

Vijnana Bharati

के प्रथम पद के लिए और दूसरे गायत्री के अन्तरिक्ष स्थानीय द्वितीय पद के लिए हों । यह उल्लेखनीय है कि पुराणों में सार्वत्रिक रूप से शिव के 8 नामों के अन्तर्गत भव, शर्व आदि का उल्लेख आता है ।

महावेदी में दक्षिण की मार्जालीय अग्नि का अपना विशेष महत्त्व होता है । प्राग्वंश में दक्षिण की अग्नि का नाम अन्वाहार्यपचन अग्नि है जो अर्धचन्द्राकार होती है और जिस पर ऋत्विजों हेतु ओदन आदि का पाक किया जाता है । इसका अधिपति नल होता है जो द्यूत में इतना पारङ्गत नहीं है । वह द्यूत में हार जाता है । कहा गया है कि नल अश्व विद्या जानता है, लेकिन अक्ष विद्या नहीं जानता, इसलिए द्यूत में हार जाता है । लेकिन नल भोजन पाक में भोजन में रस उत्पन्न करने में समर्थ है । यह अक्ष विद्या क्या है, यह अन्यत्र (विज्ञान भारती प्रदीपिका) स्पष्ट किया जा चुका है । आधुनिक विज्ञान में अक्ष को चुम्बक के माध्यम से समझ सकते हैं । लोहे से बने चुम्बक में आसपास की सारी चुम्बकीय धारा केन्द्रित हो जाती है । यदि किसी लोहे की छड पर धातु का तार लपेट कर उसमें विद्युत का प्रवाह किया जाए तो लोहा चुम्बक बन जाता है, अक्ष बन जाता है, उसमें आसपास की धारा को खींचने की क्षमता विकसित हो जाती है । इस चुम्बक से बहुत से कार्य लिए जा सकते हैं, जैसा कि आजकल विज्ञान में किया जा रहा है । इसके विपरीत अश्व विद्या फैलने की विद्या है ।

महावेदी में स्थित मार्जालीय अग्नि इसी अन्वाहार्यापचन का रूप है या कोई अन्य विशिष्ट अग्नि है, यह अन्वेषणीय है । लेकिन सोमयाग की प्रक्रिया से ऐसा लगता है कि प्राग्वंश में गार्हपत्य अग्नि के उत्तर कोण में प्रवर्ग्य हेतु जो अग्नि का खर बनाया जाता है, प्रवर्ग्य प्रक्रिया समाप्त होने के पश्चात् इस खर की मृदा को उठाकर मार्जालीय धिष्ण्य में डालते हैं । अतः यह अनुमान लगाना चाहिए कि मार्जालीय अग्नि में प्रवर्ग्य खर के गुण होते हैं । संक्षेप में, प्रवर्ग्य इष्टि में प्रवर्ग्य खर पर महावीर संज्ञक मृत्तिका पात्र में उबलते हुए घृत में अज व गौ के दुग्ध का सिंचन करते हैं जिससे बडी ऊंची ज्वालाएं उठती हैं । इस अग्नि की स्तुति की जाती है । यह प्रवर्ग्य संभवतः शरीर के रस के घर्म रूप, ज्वाला रूप बनने का प्रतीक है और स्तुति में इसे सूर्य व चन्द्र दोनों रूप दिए गए हैं । जब त्रिष्टुप् छन्द के विषय में कहा जाता है कि यह ग्रीष्म ऋतु से, तप से, वज्र से सम्बन्धित है, तो यहां तप का तात्पर्य घर्म उत्पन्न करने से लिया जा सकता है । त्रिष्टुप् को चक्षु रूप कहा गया है । कहा गया है कि जो सुना है, वह सत्य नहीं होता, जो आंख से देखा गया है, वह सत्य है (तैत्तिरीय ब्राह्मण) । वैदिक साहित्य में चक्षण से तात्पर्य संभवतः सूर्य और चन्द्रमा, 2 प्रकार के चक्षण से है (जैमिनीय ब्राह्मण 1.70 का कथन है कि वाग् समुद्र है और मन समुद्र का चक्षण करता है । मन को चन्द्रमा से सम्बद्ध किया जाता है) । लेकिन चक्षण के संदर्भ में उपरोक्त कथन संतुष्टि के लिए पर्याप्त नहीं लगते । इससे आगे के रहस्यों को जानने के लिए माध्यन्दिन सवन के कृत्यों पर दृष्टि डालनी होगी । माध्यन्दिन सवन में सोमाभिषव के पश्चात् ग्रावस्तुत नामक ऋत्विज अपनी आंखों पर पट्टी बांधकर सोम का स्तवन करता है । कहा गया है कि यदि वह बिना पट्टी बांधे स्तवन करे तो उससे देवताओं में विष का संचार होता है । यह आंखों पर पट्टी बांधना सम्यक् चक्षण के लिए अन्तर्मुखी होना हो सकता है । एक अन्य महत्त्वपूर्ण कृत्य वैश्वसृज होम या यजमान द्वारा ऋत्विजों को दक्षिणा दान है । दक्षता प्राप्त करने का काम अभी भी मार्जालीय अग्नि से लिया जाता है । इसीलिए माध्यन्दिन सवन में जब यजमान अपने अङ्गों को निकाल कर ऋत्विजों को दक्षिणा रूप में देता है तो यह कार्य मार्जालीय अग्नि के समीप ही सम्पन्न होता है । दक्षता प्राप्ति के संदर्भ में पुराणों में दक्ष यज्ञ के विध्वंस की कथा उल्लेखनीय है । इस सवन में निष्पन्न किए जाने वाले कृत्यों में एक निष्केवल्य शस्त्र होता है और यह अनुमान लगा सकते हैं कि निष्केवल्य शस्त्र समाधि के समकक्ष कोई स्थिति हो सकती है । यह अनुमान लगाया जा सकता है कि माध्यन्दिन सवन में यजमान समाधि में प्रवेश और समाधि से व्युत्थान करता है और इस प्रकार उसे सम्यक् चक्षण की क्षमता प्राप्त होती है ।

पश्चिम दिशा में ऋत्विजों व यजमान के बैठने का स्थान होता है जिसे सदोमण्डप कहते हैं । सदोमण्डप की 6 धिष्ण्य संज्ञक अग्नियां प्रायः बुझी हुई अवस्था में रहती हैं और जब कभी आवश्यकता होती है, आग्नीध्र नामक उत्तर दिशा का ऋत्विज उन्हें अपनी अग्नि से प्रज्वलित करता है । इन अग्नियों के अधिपति मर्त्य और अमर्त्य स्तर से सम्बन्धित 2 नामों वाले गन्धर्व होते हैं जिन्हें यह शाप मिला हुआ है कि उन्हें सोम प्राप्त नहीं होगा, केवल घृत की आहुति ही प्राप्त होगी । यज्ञ में इन 6 धिष्ण्य अग्नियों का नियन्त्रण मैत्रावरुण, होता, नेष्टा, पोता, अच्छावाक् आदि ऋत्विज करते हैं । सदोमण्डप में ही एक औदुम्बरी स्तम्भ होता है जो पृथिवी से निकलने वाली ऊर्क् का प्रतीक है और यह ऊर्क् अन्न रूप है । स्वयं सदोमण्डप उदर रूप होता है और इस प्रकार इस सदोमण्डप रूपी उदर की पूर्ति ऊर्क रूपी अन्न से होती है । यह पश्चिम दिशा का बहुत अच्छा उदाहरण है ।

यह उल्लेखनीय है कि प्राग्वंश में उत्तर की अग्नि का अस्तित्व प्रायः नगण्य होता है । पूर्व में आहवनीय और पश्चिम में गार्हपत्य अग्नि होती है । गार्हपत्य अग्नि का अधिपति यम होता है और यम से स्पष्ट है कि प्राग्वंश की अवस्था में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है कि कर्मों के फल से बचा जा सके । यम द्वारा नियत कर्मों के फल को भोगना ही पडेगा ।

प्राग्वंश की गार्हपत्य अग्नि और उत्तरवेदी के सदोमण्डप की तुलना उल्लेखनीय है । लगता है कि गार्हपत्य अग्नि का परिष्कृत रूप ही सदोमण्डप बना है (पुष्टि के लिए देखें शतपथ ब्राह्मण 7.1.1.10) । सोमयाग के आरम्भ में यजमान द्वारा दीक्षा ग्रहण की जाती है और यह कार्य गार्हपत्य अग्नि पर किया जाता है । ऐतरेय ब्राह्मण आदि में आता है कि सबसे पहले जगती सोम प्राप्ति के लिए गई लेकिन उसे अपने 4 अक्षरों में से 3 को खोना पडा और उसके साथ में दीक्षा भी जुड गई । अतः दीक्षा जगती का पहला रूप है जो गार्हपत्य पर सम्पन्न होता है । दीक्षा कृत्य में सबसे पहले नापित यजमान के पूरे शरीर के केशों का क्षौर कर्म करता है । फिर यजमान विभिन्न प्रकार की दीक्षाएं ग्रहण करता है । दीक्षा क्रम में वह कृष्णाजिन दीक्षा भी ग्रहण करता है । दीक्षा के माध्यम से यजमान विभिन्न प्रकार की योनियों में गर्भ रूप बनता है जिससे उसे कोई हानि न पहुंचा सके । उदाहरण के लिए, द्यौ सूर्य रूपी यजमान को गर्भ में धारण करती है, अन्तरिक्ष वायु रूपी यजमान को, पृथिवी अग्नि को, दिशाएं चन्द्रमा को आदि (तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.7.7.2), पृथिवी सब भूतों को गर्भ में धारण करती है (अथर्ववेद 5.25) । गर्भ स्वयं की रक्षा करने में असमर्थ होता है, उसकी रक्षा अन्य करते हैं । दीक्षा क्रम में क्षौर कर्म से तात्पर्य अपनी चेतना को अन्तर्मुखी करने से हो सकता है - जहां केश, लोम भी बहिर्मुखी न होने पाएं । दीक्षा कर्म में पावमानी मन्त्रों का पाठ (तैत्तिरीय ब्राह्मण 1.4.8, गार्हपत्य अग्नि से विभिन्न पापों को दूर करने की प्रार्थना(तैत्तिरीय ब्राह्मण 3.7.12), व अरिष्टनेमि तार्क्ष्य की स्तुति (सामवेद 1.4.1.5.1) उल्लेखनीय हैं । दीक्षा के संदर्भ में ही अथर्ववेद 6.81 में अश्वत्थ द्वारा शमी में गर्भ स्थापित किया जाता है ।

तृतीय सवन को आर्भव पवमान कहा जाता है और इसमें मनुष्य से देव बने ऋभु गण का प्राधान्य कहा गया है । ऋभुओं पर अन्यत्र लिखी एक टिप्पणी में यह संकेत किया गया है कि ऋभु संभवतः ऋत् की

Vijnana Bharati

ओर संकेत करते हैं । एक सत्य होता है, एक ऋत् । मर्त्य स्तर पर सत्य का साक्षात्कार नहीं हो सकता, ऋत् का हो सकता है । ऋत् का साक्षात्कार प्रायः खराब - अच्छे शकुनों के रूप में होता है । तृतीय सवन जगती छन्द से सम्बद्ध होता है, अतः परोक्ष रूप में शकुन - अपशकुन भी जगती से सम्बन्धित होने चाहिएं । और जब वैदिक साहित्य में प्रायः कहा जाता है कि जगती श्रोत्र से सम्बन्धित है, तो उसका अभिप्राय भी यही हो सकता है कि यह श्रुत ज्ञान को स्मार्त्त ज्ञान में रूपान्तरित करने में समर्थ है ।

पुराणों में दक्ष यज्ञ के आख्यान में दक्ष श्मशानवासी शिव का अनादर करता है । अतः उसका यज्ञ नष्ट हो जाता है । यह श्मशान भी जगती से सम्बद्ध होना चाहिए ।

सोमयाग में तृतीय सवन में अन्तिम कृत्य हारियोजन ग्रह होता है । इस कृत्य में उन्नेता नामक ऋत्विज द्रोणकलश में सोमरस डालकर वौषट् सहित उसकी आहुतियां महावेदी की आहवनीय अग्नि में देता है । फिर उस द्रोणकलश में धान पकाकर उसका सब ऋत्विजगण भक्षण करते हैं । इसमें प्रयुक्त होने वाले मन्त्रों में योजा नु इन्द्र ते हरी का उल्लेख आता है । कहा गया है कि ऋक् व साम ही इन्द्र के 2 हरि हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों में सार्वत्रिक रूप से यह उल्लेख आता है कि यत् कर्म क्रियमाणम् ऋग् अभिवदति - अर्थात् ऋक् वह है जो किसी कर्म का सम्पादन करने से पूर्व ही कर्म का आभास करा देती है । जगती के संदर्भ में उपरोक्त वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है ।

साहित्य में प्रायः गायत्री को पृथिवी व 8 वसुओं से, त्रिष्टुप् को अन्तरिक्ष व 11 रुद्रों से तथा जगती को द्युलोक व 12 आदित्यों से सम्बद्ध किया जाता है । हो सकता है कि यह उपरिवर्णित दिशाओं में भ्रमण की अपेक्षा ऊर्ध्वमुखी विकास की स्थिति हो । कहा गया है आदित्य जगती छन्द में भ्रमण करता है । इसका एक कारण यह दिया गया है कि चूंकि आदित्य के उदय होने पर जगत सक्रिय हो जाता है, जाग जाता है, इसलिए ऐसा कहा गया है । ऐसा संभव है कि कर्मों के फल का क्षय होने के पश्चात् ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती हो जब आदित्य उदित होता हो । अन्य स्थान पर कहा गया है कि जगती में एक किरण? शतधा सहस्रधा विभाजित हो सकती है । जैमिनीय ब्राह्मण 1.272 में जगती को भूमा कहा गया है । अन्यत्र सार्वत्रिक रूप से जगती को वर्षा ऋतु के साथ सम्बद्ध किया जाता है । यह वर्षा भी आनन्द की वर्षा होनी चाहिए जिसका संकेत भूमा शब्द में मिलता है ।

सोमयाग के सदर्भ में अनुष्टुप् छन्द को समझने के लिए तृतीय सवन के पश्चात् यज्ञायज्ञीय स्तोत्र का गान उल्लेखनीय है । यद्यपि इस साम का मूल बृहती व सतोबृहती छन्दों में है, लेकिन जैमिनीय ब्राह्मण 1.284 का कथन है कि सामगान के समय इसमें वाग् अक्षर जोड देने से यह अनुष्टुप् के समकक्ष बन जाता है । कहा जाता है कि यज्ञायज्ञीय गान के पश्चात् यजमान में वरदान देने की सामर्थ्य आ जाती है । अतः किसी की कामना पूर्ति का जो भी कार्य करना होता है, वह यजमान यज्ञायज्ञीय अग्निष्टोम साम के पश्चात् ही करता है । जैमिनीय ब्राह्मण 1.299 का कथन है कि जहां गायत्र स्वारम् है, त्रैष्टुभ निधनवत् है, जागत साम ऐळम् है, वहीं आनुष्टुभ साम ऋक्सम प्राजापत्य है ।

ऊपर के वर्णन में प्रत्यक्ष रूप से छन्दों के रहस्यों को कहां तक समझा जा सकता है, इस पर विचार किया गया है । लेकिन पुराणों की कथाओं का एक अन्य पक्ष भी है और वह है कृत या सत्य, त्रेता, द्वापर व कलियुग नामक 4 युग । सत्य युग में देवों और असुरों ने मिल कर समुद्र का मन्थन किया था जिससे 14 हालाहल विष और 14 रत्नों की उत्पत्ति हुई थी । इस मन्थन में विष्णु ने कूर्म का रूप धारण किया था, मेरु पर्वत मथानी बना था और वासुकि नाग मथने की रस्सी । ब्राह्मण ग्रन्थों में इस रहस्य का अधिक उद्घाटन नहीं किया गया है कि ऋषियों ने कूर्म को देखने के पश्चात् क्या किया । लेकिन पुराणों की कथाओं से इसे समझा जा सकता है । सत्य युग को पूर्व दिशा समझना चाहिए और इस प्रकार गायत्री छन्द से क्या क्या प्राप्ति हो सकती है, वह मन्थन से प्राप्त 14 रत्नों से सम्बन्धित होनी चाहिए । त्रेता युग को दक्षिण दिशा समझा जा सकता है और त्रेता युग में राम का सीता से विवाह, दक्षिण दिशा में स्थित लंका के अधिपति रावण द्वारा सीता का हरण व राम द्वारा रावण का वध प्रसिद्ध कथाएं हैं । सोमयाग में माध्यन्दिन सवन में ग्रावस्तुत ऋत्विज अपनी आंखों पर पट्टी बांधकर ऋचाओं द्वारा स्तुति करता है । ग्रावा सोम कूटने के पत्थरों को कहते हैं । वैदिक साहित्य में कहा गया है कि ग्रावाणः सोम कूटते समय शब्द करते हैं । एक ओर ग्रावाणः हैं तो दूसरी ओर रावण है । रव शोर को कहते हैं । हमारे अंदर कोई भी क्षोभ उत्पन्न हो, उसे रव कह सकते हैं । वह हमें अभिभूत कर लेता है । अपेक्षा इस बात की है कि वह रावा ग्रावा बने, सोम कूटने का पत्थर बने, वह व्यर्थ न जाने पाए । यही रावण का वध हो सकता है । यह दक्षता प्राप्त करने की दिशा है । रावण को सीता प्राप्त करने की कामना है । सीता पृथिवी का कर्षण करने से उत्पन्न होती है । जहां पृथिवी का प्राण रूपी हल से कर्षण किया जा सकता है, उसे ग्राम्य प्रदेश कहते हैं । जहां प्राण रूपी हल से पृथिवी का कर्षण नहीं किया जा सकता, उसे अरण्य कहते हैं (शतपथ ब्राह्मण) । राक्षस अरण्य में वास करते हैं । हल को वैदिक साहित्य में अक्षों में से एक कहा जाता है और त्रिष्टुप् छन्द की व्याख्या के संदर्भ में ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, अक्ष विद्या नल की कथा के माध्यम से अन्वाहार्यपचन अग्नि से और अन्वाहार्यपचन अग्नि त्रिष्टुप् छन्द से जुडी है । लेकिन इससे भी आगे समस्या यह है कि वैदिक साहित्य में त्रिष्टुप् को चक्षु से सम्बद्ध किया गया है । वैदिक साहित्य में प्रायः कहा जाता है कि अक्षियों में चक्षु विकसित करना है, कर्ण में श्रोत्र आदि (तैत्तिरीय आरण्यक आदि) । अतः अक्ष और अक्षियों से भी आगे चक्षु का विकास कैसे होगा, यह एक विचारणीय विषय है । आधुनिक विज्ञान में समस्या यह है कि किसी भी वस्तु को यदि देखना हो तो उस पर जो प्रकाश की किरणें पडती हैं, उन्हें हमारे चक्षु ग्रहण करते हैं । लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि यदि वस्तु के सम्बन्ध में वास्तविक जानकारी प्राप्त करनी है तो वस्तु को देखने के लिए प्रकाश का स्रोत वही होना चाहिए जो प्रकाश को ग्रहण करने का । अतः चक्षु को सूर्य रूप होना चाहिए । अथवा यह कहा जा सकता है कि प्रकाश के संदर्भ में चक्षु अक्ष होना चाहिए । योग में ऐसा कहा जाता है कि अन्धे व्यक्ति भी अपने अन्दर के प्रकाश से देखने में समर्थ हो जाते हैं, अन्धेरे में भी ।

रामायण की इस कथा से ही गायत्री को समझने के लिए भी मार्ग प्रशस्त होता है । सोमयाग में प्रातःसवन में आज्यस्तोत्र और आज्य शस्त्रों का वाचन होता है । आज्य उस घृत को कहते हैं जो स्वतः स्फूर्त मन्थन से उत्पन्न हो जाता है, परिश्रम से नहीं । आज्य को वैदिक साहित्य में बहुत प्रकार से समझाने का प्रयास किया गया है लेकिन इसको सहज रूप में समझना सबसे सरल होगा । डा. फतहसिंह का कहना है कि अज वह स्थिति होती है जब कोई विचार आदि उत्पन्न न हो, बिल्कुल शान्त स्थिति, अ - जन्म । यह गायत्री की स्थिति है । त्रिष्टुप में तो क्षोभ उत्पन्न हो सकता है ।

पश्चिम दिशा को द्वापर से सम्बन्धित माना जा सकता है । द्वापर में कृष्ण द्वारा पश्चिम दिशा में द्वारका की स्थापना की कथा सर्वविदित है । द्वारका के संदर्भ में 2 कथाएं महत्त्वपूर्ण हैं - एक तो अक्रूर द्वारा स्यमन्तक मणि का ग्रहण व दूसरा मूसल द्वारा यादवों का नाश । अक्रूर के

Vijnana Bharati

संदर्भ में वैदिक साहित्य में उल्लेख आता है कि अक्रूर चक्षु से देखे । यह स्थिति दीक्षा की स्थिति के लिए बहुत उपयुक्त है जहां गर्भ में स्थित हो जाने पर क्रूर चक्षु से देखने की संभावना नहीं रहती । मूसल द्वारा यादवों के नाश को कर्म फल के नष्ट न होने की स्थिति समझा जा सकता है ।

छन्दों के संदर्भ में अन्य भी बहुत से महत्त्वपूर्ण संदर्भ प्राप्त होते हैं और छन्दों के संदर्भ में किसी प्रस्ताव की सार्थकता तभी है जब वह अधिकांश संदर्भों के रहस्यों का उद्घाटन करने में समर्थ हो ।

स्तोम

वैदिक साहित्य ऋषि व छन्द तक ही सीमित नहीं रहा है । इससे ऊपर उठकर उसने सप्तर्षियों व स्तोमों का कल्पन किया है । स्तोम शब्द ऋग्वेद की ऋचाओं में सार्वत्रिक रूप से प्रकट हुआ है । सामवेद में स्तोमों के माध्यम से गाए जाने वाले सामों का रहस्य क्या है, यह अभी तक स्पष्ट नहीं है । ब्राह्मणों का कथन है कि साम देव हैं, प्रजा छन्द हैं (जैमिनीय ब्राह्मण 1.277) । जैमिनीय ब्राह्मण 3.293 का कथन है कि सामों द्वारा (अह या दिन) व्यूढ/व्यूह होते हैं, छन्दों द्वारा समूढ/समूह । जैमिनीय ब्राह्मण 3.313 का कथन है कि छन्द देवों के अश्व हैं, स्तोम देवरथ हैं । जैमिनीय ब्राह्मण में ही सोमयाग में एक दिन में जिन सामों का प्रयोग होता है, उन सबको एक रथ के विभिन्न अवयवों का रूप दे दिया गया है । इसके अतिरिक्त छन्दों के भी समूह और व्यूह 2 प्रकार कहे गए हैं और यह उल्लेख है कि यदि कोई समूह प्रकार के द्वादशाह का यजन करता है तो उसे व्यूह प्रकार का भी यजन करना चाहिए । इसी प्रकार कोई व्यूह प्रकार का यजन करता है तो उसे समूह प्रकार का भी करना चाहिए (जैमिनीय ब्राह्मण 3.312) । आज लोक में हम देखते हैं कि भीड एकत्र हो जाती है । लेकिन कुछ विशिष्ट व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो भीड में जाना पसंद नहीं करते । वह अपना एक विशिष्ट वर्ग बनाएंगे । यही समूह और व्यूह में अंतर है । आधुनिक भौतिक विज्ञान में इसी आधार पर बोस - आइन्स्टीन सांख्यिकी और फर्मी - डिराक सांख्यिकी का जन्म हुआ है । प्रकृति के बहुत से कण ऐसे हैं जो समूह बना सकते हैं, भीड बन सकते हैं । लेकिन कुछ ऐसे हैं जो ऐसा नहीं कर सकते । प्रायः जिन कणों पर कोई आवेश होता है, वह समूह नहीं बनाते । सामान्य भाषा में आवेश को अहंकार कह सकते हैं । अहंकार रखने वाले व्यक्ति समूह में सम्मिलित नहीं होते । जैमिनीय ब्राह्मण 3.339 में उल्लेख आता है कि प्रजापति के शरीर में मन और प्राण ने प्रवेश किया । वह व्यूह जैसा हो गया । उसने समूह छन्द द्वारा - - - । वैदिक साहित्य में सर्वाङ्गीण विकास के लिए समूह का, छन्दों का मार्ग है और ऊर्ध्वमुखी त्वरित गति से प्रगति के लिए स्तोमों का मार्ग है, ऐसा कहा जा सकता है । सप्तर्षि स्तोमों से सम्बन्धित हैं ।

जैसा कि छन्दों के संदर्भ में ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, ऐसा अनुमान है कि भौतिक पृथिवी तो सूर्य की परिक्रमा करती है, लेकिन चेतन पृथिवी चेतन सूर्य की परिक्रमा नहीं करती । वैदिक साहित्य में यह अपेक्षित है कि ऐसा हो, संवत्सर का निर्माण हो । वैदिक साहित्य में मन, प्राण और वाक् को क्रमशः चन्द्रमा, सूर्य व पृथिवी माना गया है । यदि मन, प्राण और वाक् में परस्पर कोई सम्पर्क हो जाए तो वह श्रेष्ठ स्थिति होगी । जैमिनीय ब्राह्मण 2.409 तथा 3.334 में उल्लेख आता है कि सब देव प्रजापति से दूर चले गए लेकिन इन्द्र नहीं गया । तब प्रजापति ने इन्द्र से कहा कि स्तो मे, मेरी स्तुति करो । ऐसा करने से प्रजापति की प्रजा पुनः प्रजापति के पास आ गई और उनके साथ में सर्वश्रेष्ठ अन्न या अन्नाद्य भी प्रजापति के पास आ गए । यह स्तो - मे ही स्तोम कहलाया । इसका निहितार्थ यही हो सकता है कि किसी प्रकार चेतन स्तर पर मन, प्राण और वाक् का परस्पर सम्बन्ध जुड जाए, वह एक दूसरे की परिक्रमा करने लगें तो स्तोम उत्पन्न हो सकता है । स्तुति से तात्पर्य परिक्रमा होना चाहिए । ऐसा प्रतीत होता है कि स्तोम बनने की स्थिति देवों के स्तर पर ही आती है, मर्त्य स्तर पर तो छन्द ही बन पाते हैं । ऋग्वेद की ऋचाओं में सार्वत्रिक रूप से स्तोम व उक्थ शब्दों का एक साथ उल्लेख आता है (उदाहरण के लिए, ऋग्वेद 1.8.10, 1.5.8, 1.136.5, 2.11.3, 3.42.4, 6.59.10, 8.14.11 आदि) । तैत्तिरीय संहिता 3.1.2.4 में उल्लेख आता है कि उक्थ स्तोम में प्रतिष्ठित होते हैं, स्तोम सोम में प्रतिष्ठित होता है और सोम वायव्य ग्रह में प्रतिष्ठित होता है । पुराण विषय अनुक्रमणिका में उक्थ शब्द पर टिप्पणी में यह स्पष्ट किया गया है कि सोए हुए प्राणों के उत्थापन का नाम उक्थ है । उदाहरण के लिए नाम लेने पर सोया हुआ व्यक्ति जाग जाता है । ऋग्वेद की ऋचाओं में जिसे उक्थ नाम दिया गया है, सोमयाग में उन्हें शस्त्र कहा जाता है । सोमयाग में सामवेदी ऋत्विज पहले स्तोमों में बद्ध सामगान करते हैं और उसके पश्चात् ऋग्वेद से सम्बन्ध रखने वाले ऋत्विज सामगान से सम्बद्ध शस्त्र का शंसन या वाचन करते हैं । इस शंसन में ऋग्वेद की ऋचाओं का समावेश होता है और ऋचाएं छन्दों में बद्ध होती हैं । स्तोमों का क्या लाभ होता है, इसका ऋग्वेद की ऋचाओं में उल्लेख किया गया है । लेकिन इससे आगे एक प्रश्न यह उठता है कि ब्राह्मण ग्रन्थों ने स्तोमों का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, क्या उसका कोई प्रमाण वैदिक ऋचाओं में मिलता है ? उदाहरण के लिए, जैमिनीय ब्राह्मण 2.218 में त्रिवृत् स्तोम को प्राण व वसिष्ठ ऋषि से, पञ्चदश स्तोम को भरद्वाज व दण्ड से, सप्तदश स्तोम को जमदग्नि व भूमा या अन्नाद्य से, एकविंश स्तोम को गोतम व श्रद्धा से, त्रिणव स्तोम को अत्रि व भूयः या मन्त्रवादी प्रजा से तथा त्रयस्त्रिंश स्तोम को विश्वामित्र व स्वराज्य से सम्बद्ध किया गया है । वैदिक ऋचाओं में तो प्रत्यक्ष रूप से त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश आदि स्तोमों का उल्लेख नहीं आता, लेकिन व्यवहार में हम देखते हैं कि सारा सामवेद ही इनके ऊपर आधारित है । अतः इसके पीछे छिपे रहस्यों का उद्घाटन अपेक्षित है । सामवेद में प्रत्येक साम को विभिन्न स्तोमों में गाया जा सकता है । जिस प्रकार विभिन्न छन्दों के उद्देश्यों का वर्गीकरण हो गया है, उसी प्रकार स्तोमों का भी होना चाहिए ।

मैत्रायणी संहिता 1.5.5 का कथन है कि स्तोम केवल सोमयाग तक ही सीमित नहीं हैं, अग्निहोत्र जैसे प्रारम्भिक यज्ञ में स्तोमों की प्रतिष्ठा होनी चाहिए, अन्यथा वह यज्ञ नहीं हो सकता । अग्निहोत्र में स्तोमों की प्रतिष्ठा किस प्रकार से होती है, इसे आगे समझने की आवश्यकता है । तैत्तिरीय संहिता 1. 5.9.7 का कथन है कि पशु प्रजापति से दूर होकर रात्रि में असुरों के पास चले गए थे । तब प्रजापति ने छन्दों द्वारा अहोरात्र से पशुओं को पुनः प्राप्त किया । अतः यह कहा जा सकता है कि प्रजा की पुनः प्राप्ति का जो कार्य स्तोमों द्वारा होता है, वह छन्दों द्वारा भी होता है । दोनों में क्या अन्तर है, यह अन्वेषणीय है । ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक साहित्य में जिसे प्रजापति की प्रजा कहा गया है, वह मनुष्य के मुख की आभा, उसका औरा हो सकती है । यह आभा प्रजापति के लिए सारे अन्न का, अन्नाद्य का कर्षण करने वाली होनी चाहिए, ऐसा वैदिक साहित्य से संकेत मिलता है । स्वयं आभा भी मनुष्य के उच्चतर व्यक्तित्व के विकास के लिए और मर्त्य स्तर की स्थिरता के लिए अन्न का कार्य करती है ।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, स्तोम देवों से और छन्द ऋचाओं से, मनुष्यों से सम्बन्ध रखने वाले हैं । वैदिक साहित्य के सार्वत्रिक उल्लेख के अनुसार यत् कर्म क्रियमाणम् ऋगभिवदति - - अर्थात् ऋचा से किसी कर्म के सम्पादन से पूर्व ही आभास हो जाता है । तब स्तोम द्वारा क्या प्राप्ति होती है ? ऋग्वेद 8.64.1, 8.54.8 व

1.156.1 से हमें उत्तर प्राप्त होता है कि स्तोमों द्वारा देवों के प्रसन्न होने पर देवों से हमें राधः, श्रुति का ज्ञान प्राप्त होता है । वैदिक साहित्य में सार्वत्रिक रूप से उल्लेख आता है कि देवों की प्रगति त्वरित गति से, अद्य, आज ही होती है, जबकि अङ्गिरस गण जो मर्त्य स्तर का प्रतीक हो सकते हैं, धीमी गति से प्रगति करते हैं । उनकी गति श्वः, भविष्य के कल द्वारा होती है । ऋग्वेद 4.10.1 में स्तोमों द्वारा अग्नि को अद्य अश्व, भविष्य के कल से रहित, बनाया गया है । ऋग्वेद 9. 108.7 में स्तोम की तुलना अश्व से की गई है । लेकिन जैमिनीय ब्राह्मण 3. 313 में स्तोमों को देवरथ व छन्दों के अश्व कहा गया है । तैत्तिरीय संहिता 5.2.1.6 के अनुसार स्तोम से देवों ने इस लोक में समृद्धि प्राप्त की व छन्दों से उस लोक में । ऋग्वेद 3.32.13 में पूर्व, मध्यम व नूतन स्तोमों का उल्लेख आता है । यह अन्वेषणीय है कि यह 3 प्रकार के स्तोम कौन से हैं ?

छन्दों व स्तोमों के वर्गीकरण का लोक में बहुत महत्त्व पाया गया है । भारतीय साहित्य में मान्यता है कि मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति की चेतना पहले तो एक इकाई रहती है और फिर वह धीरे - धीरे एक समूह में विलीन होने लगती है जिन्हें पितर कहते हैं । प्राचीन अमेरिकी सभ्यता के अनुसार मृत्यु के पश्चात् सभी प्राणी एक आकाशगङ्गा रूपी चेतना की धारा में विलीन हो जाते हैं और उसी से वापस आते हैं । यह माना जा सकता है कि पशुओं में जो चेतनागत अहंकार होता है, वह प्रकृति - प्रदत्त होता है और उनकी मृत्यु के पश्चात् वह उसी प्रकृति की समष्टि चेतना में विलीन हो जाता है । भारतीय समाज में जो मृत्यु के पश्चात् व्यक्ति की चेतना के इकाई बने रहने की धारणा है, वह विवादास्पद है । ऐसा भी हो सकता है कि यदि चेतना विकसित नहीं है तो चेतना का अधिकांश भाग टूट कर बिखर जाता हो और केवल एक अंश विशेष ही पितरों में विलीन होता हो । मृतक की चेतना को अधिकतम अंश तक इकाई बनाने के लिए ही हो सकता है मृतक को पिण्डदान का विधान हो ।

आभार प्रदर्शन

यह कार्य डा. लक्ष्मीनारायण धूत द्वारा अपने लेख में यह रहस्योद्घाटन करने के पश्चात् ही सम्भव हो सका है कि वैदिक साहित्य की भाषा में जिसे द्यूत कहा जाता है, आधुनिक विज्ञान की भाषा में वह चांस या संभावना का सिद्धान्त है । यदि गङ्गाखेड, महाराष्ट्र के स्वर्गीय श्री रङ्गनाथ जी सेलूकर और दिल्ली के श्री हरिराम गुप्ता द्वारा जनता के प्रदर्शन हेतु यज्ञों का आयोजन न किया जाता तो सोमयाग की प्रकृति को समझने का अवसर मिलना कठिन होता ।

संदर्भ

1.आधुनिक और प्राचीन विज्ञानों में कारण - कार्य सम्बन्ध
विपिन कुमार व राधा गुप्ता
(विज्ञान भारती प्रदीपिका, जोधपुर को प्रकाशन हेतु प्रेषित)
2.प्राचीन वैदिक व पौराणिक साहित्य में कार्य - कारण व सम्भावना सिद्धान्त विपिन कुमार व राधा गुप्ता
(विज्ञान भारती प्रदीपिका, जोधपुर को प्रकाशन हेतु प्रेषित)
3. पुराण विषय अनुक्रमणिका तीसरा भाग (प्रकाशनीय)

परिशिष्ट

प्रातःसवन के कृत्य : 1 सुत्योपक्रम, 2 प्रातरनुवाकः, 3 सुत्योपक्रमौद्गात्रम् , 4 अपां ग्रहणम् , 5. अपोनप्त्रीयाद्यनुवचनम् , 6 दधि ग्रह प्रचारः अदाभ्यांशुप्रचारश्च , 7 उपांशुग्रहप्रचारः, 8 सोमाभिषवः, 9 अन्तर्यामग्रहप्रचारः, 10 ग्रहग्रहणम् , 11 ग्रहग्रहणौद्गात्रम् , 12 बहिष्पवमान निःसर्पणम् , 13 बहिष्पवमान स्तोत्रम् , 14 सवनीय पशुवपायागन्तम् , 15 सवनीय पशुवपायाग हौत्रम् , 16 सवनीय पशुवपायागौद्गात्रम् , 17 सवनीयपुरोडाशयागः , 18 सवनीयपुरोडाशयागहौत्रम् , 19 द्विदेवत्य ग्रहप्रचारः , 20 द्विदेवत्य ग्रहप्रचारहौत्रम् , 21 शुक्रामन्थिप्रचारः , 22 शुक्रामन्थिप्रचारहौत्रम् , 23 होत्रकचमसप्रचारः , 24 होत्रकचमसप्रचारहौत्रम् , 25 द्विदेवत्य सोमभक्षणम् , 26 सवनीयेडा , 27 सवनमुखसोमभक्षणम् , 28 अच्छावाकचमसप्रचारः , 29 अच्छावाकचमसप्रचारहौत्रम् , 30 ऋतुग्रहप्रचारः, 31 ऋतुग्रहप्रचारहौत्रम् , 32 ऐन्द्राग्नग्रहग्रहणम् , 33 आज्यशस्त्रम् , 34 ऐन्द्राग्नग्रह प्रचारः वैश्वदेवग्रहग्रहणम् च , 35 प्रथमाज्यस्तोत्रम् , 36 प्रउगशस्त्रम् , 37 वैश्वदेव ग्रह प्रचारः मैत्रावरुण ग्रह ग्रहणं च , 38 द्वितीयाज्य स्तोत्रम् , 39 मैत्रावरुण शस्त्रम् , 40 मैत्रावरुण ग्रहप्रचारः ऐन्द्र ग्रह ग्रहणं च , 41 तृतीयाज्य स्तोत्रम् , 42 ब्राह्मणाच्छंसि शस्त्रम् , 43 ऐन्द्र ग्रह प्रचारः ऐन्द्राग्नग्रह ग्रहणं च , 44 चतुर्थाज्यस्तोत्रम् , 45 अच्छावाक् शस्त्रम् , 46 ऐन्द्राग्न ग्रह प्रचारः

माध्यन्दिन सवन के कृत्य : 1सोमाभिषव, 2ग्रावस्तुदभिष्टवनम् , 3ग्रह ग्रहणम् , 4माध्यन्दिन पवमान निःसर्पणम् , 5माध्यन्दिन पवमान स्तोत्रम् , 6दधिघर्म प्रचार होत्रम् , 7 सवनीय पुरोडाशयाग होत्रम् , 8 शुक्रामन्थी प्रचारः, 9 होत्रकाचमस प्रचार होत्रम् , 10 सवनीयेडा, 11 सवनमुख सोमभक्षणम् , 12 दक्षिणा वैश्वसृजहोमः, 13 मरुत्वतीय यागः होत्रम्, 14 मरुत्वतीय ग्रह ग्रहणम् , 15 मरुत्वतीय शस्त्रम् , 16 मरुत्वतीय ग्रह प्रचार माहेन्द्र ग्रह ग्रहणम् , 17 प्रथम पृष्ठ स्तोत्रम् , 18 निष्केवल्य शस्त्रम् , 19 प्रतिगृह्याख्य ग्रह होत्रम् , 20 माहेन्द्र ग्रह प्रचारः ऐन्द्र ग्रह ग्रहणम् , 21 द्वितीय पृष्ठ स्तोत्रम् , 22 मैत्रावरुण शस्त्रम् , 23 ऐन्द्र ग्रह प्रचारः ग्रहणं च, 24 तृतीय पृष्ठ स्तोत्रम् , 25 ब्राह्मणाच्छंसी शस्त्रम् , 26 ऐन्द्र ग्रह प्रचार ग्रहणं च , 27 चतुर्थ पृष्ठ स्तोत्रम् , 28 अच्छावाक् शस्त्रम् , 29 ऐन्द्र ग्रह प्रचार ग्रहणं च, 30 चतुर्थ पृष्ठ स्तोत्र

तृतीयसवन के कृत्य : 1ऋजीषाभिषवः, आदित्य ग्रह प्रचारश्च , 2 आदित्य ग्रह प्रचार हौत्रम् , 3 ग्रह ग्रहणम् , 4 आर्भवपवमान निःसर्पणम् , 5 आर्भव पवमान स्तोत्रं, 6 सवनीय पशु हविर्याग हौत्रम् , 7 सवनीय पुरोडाश यागः होत्रम् , 8 सवनमुख यागः हौत्रम् , 9 होत्रक चमस प्रचार हौत्रम, 10 सवनीयेडा, 11 सवनमुख सोमभक्षणम् , 12 पिण्डदानम् , 13 सावित्रग्रह प्रचार होत्रम् च , 14 वैश्वदेव ग्रह ग्रहणम् , 15 वैश्वदेव शस्त्रम् , 16 वैश्वदेव ग्रह प्रचारः, 17 सौम्य चरु यागः हौत्रम्, 18 पात्नीवत् ग्रह प्रचार हौत्रम् , 19 होतृ चमसोन्नयनम् , 20 अग्निष्टोम स्तोत्रम् , 21 अग्निमारुत शस्त्रम् , 22 होतृचमस प्रचार, उपांशु पात्र, यज्ञायज्ञीयं, उक्थसामानि

Vijnana Bharati